THE ECONOMIC TIMES

Date: 07-02-17

Customary Law Must Bend to Basic Rights

Nagaland is convulsed over a contradiction of India's Constitution by itself. Last year, the Supreme Court upheld an appeal by the powerful Naga Mothers' Association (NMA), to allow 33% reservation for women in urban local body elections. The government of chief minister T R Zeliang wanted to conduct municipal polls on February 1, with such reservations. Various tribal organisations immediately swung into action.

They cited Article 371(A) of the Constitution, which says, "No Act of Parliament shall apply to Nagaland in relation to religious or social practices of the Nagas, Naga customary law and procedure, administration of civil and criminal justice involving decisions according to the Naga customary law, ownership and transfer of land and its resources."This contradicts Article 243(D) that guarantees reservations for women. Opposition, including from the Naga Hoho, the apex council of tribal chiefs, led to cancellation of the polls. The chief minister might be evicted. Yes, our Constitution does allow tribes to observe customary law in many social and economic spheres, a recognition of the diversity of our population.

Not all customary law — mostly codified in colonial India from oral representations — fits 21st-century India. Naga customary law has created a political society dominated entirely by men. Since its first elections in 1964, there has never been a single woman representative in its assembly. Its sole woman MP was the late Rano Shaiza, elected in 1977. This glass ceiling is an anachronism in Nagaland, where the likes of NMA play a vital public role. Half the population cannot be kept out of democratic representation. The Hoho must amend customary law to end women's subordination. Else, the constitutional guarantee of basic rights must prevail over customary law

---

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 07-02-17

दखलंदाजी का एक नया खतरा उभर रहा है न्याय के क्षेत्र में

न्यायाधीशों की नियुक्ति के मामले में **न्यायपालिका** को कार्यपालिका की ओर से अवज्ञा जैसी स्थिति का सामना करना पड़ रहा है। इस बीच संवैधानिक मोर्चे पर एक नया जोखिम उत्पन्न हो गया है। न्यायपालिका की सामाजिक न्याय की चाहत की मुठभेड़ तमिलनाडु के जल्लीकट्टïू जैसे मामले से हो गई है। इससे पहले केरल के **लोगों** ने बड़े पैमाने पर आवारा कुत्तों को मार डाला क्योंकि वे उनके लिए खतरा बन चुके थे। अगर राजनेताओं द्वारा प्रोत्साहित अवज्ञा आदेशों के क्रियान्वयन को थाम सकती है तो अदालतों का इकबाल कम होगा और इसके भयावह परिणाम हो सकते हैं। इसके बाद कावेरी जल बंटवारे और सतलज-यमुना नहर जैसे राजनीतिक रंग लिए **आर्थिक** मसले और महिलाओं के मंदिर में प्रवेश और समान नागरिक संहिता जैसे सामाजिक-धार्मिक प्रश्न सामने आएंगे।

अब तक सरकार का प्रतिरोध बच निकलने का रहा है। उदाहरण के लिए केंद्र सरकार ने अधिकांश कल्याण योजनाओं के लिए आधार को आवश्यक बना दिया जबकि सर्वोच्च न्यायालय का आदेश इसके विपरीत है। जरा इस पर नजर डालिए कि खाद्यान्न वितरण के विस्तृत आदेशों को किस तरह ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है, कैसे ध्वनि प्रदूषण को रोकने संबंधी नियम (लाउडस्पीकर के इस्तेमाल को नियंत्रित करना) बेमानी हो चुके हैं और किस तरह स्कूल बसों में पीने के पानी, अग्निशमन, प्राथमिक चिकित्सा और हर सीट के नीचे बैग रखने की ट्रे लगाने जैसे कायदों का पालन नहीं किया जाता।

सुधारों का प्रतिरोध अंतिम आदेश आने के पहले ही शुरू हो जाता है। कई ऐसी जनहित याचिकाएं हैं जो उन सामाजिक-आर्थिक मुद्दों को उठाती हैं जिन पर राज्य सरकारों ने दशकों से कोई प्रतिक्रिया नहीं दी होती। कई बार तो इनमें वकील तक पेश नहीं होते। गत सप्ताह ऐसी ही कुछ याचिकाएं एक के बाद एक सामने आईं जहां कई राज्यों ने वर्षों से अपने जवाब दाखिल नहीं किए थे। जाहिर सी बात है मुख्य न्यायाधीश सरकारों के इस रुख से खासे नाराज थे। उन्होंने नाराजगी में पूछा, 'क्या यह जोकरों की अदालत है? क्या यह पंचायत है?' जब ऐसी युक्तियां विफल हो जाती हैं और अदालती आदेशों का सड़क पर विरोध होने लगता है तो तत्कालीन सरकार अध्यादेश का रास्ता अपनाती हैं। विधायिका द्वारा यूं अदालतों को धता बताने का सिलसिला पुराना है। ऐसा ही एक अहम मामला, जहां अदालत ने इस व्यवहार को रोकने की कोशिश की थी, वह था सन 1978 का मदन मोहन पाठक बनाम भारत सरकार का मामला। सर्वोच्च न्यायालय में सात न्यायाधीशों के पीठ ने श्रम संबंधी एक मामले को खारिज करने के लिए बनाए गए कानून को निरस्त कर दिया। उन्होंने कहा कि उक्त विधान न्यायपालिका की भूमिका नहीं हड़प सकता। उसने यह भी कहा कि अप्रत्यक्ष रूप से नागरिक अधिकारों का हनन भी नहीं किया जा सकता।

तब से अब तक कई ऐसे निर्णय हो चुके हैं लेकिन कुछ फैसले ऐसे भी हैं जिनमें इस प्रश्न को सीधे तौर पर हल नहीं किया गया। सरकारें दावा करती हैं कि उनके पास जनादेश है। यही वजह है कि कई बार उन्होंने अशांति फैलने या आर्थिक परिणाम झेलने की स्थिति में न होने पर अदालती आदेशों की अनदेखी की है। वोडाफोन कर मामला भी इसका एक उदाहरण है। कुछ वर्ष पहले पीयूसीएल बनाम भारत सरकार के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि एक मतदाता को यह अधिकार है कि वह प्रत्याशी के अतीत के बारे में जाने। राजनीतिक वर्ग इस निर्णय के खिलाफ उठ खड़ा हुआ। इसके बाद आनन-फानन में एक अध्यादेश पारित किया गया और अभूतपूर्व एकता दिखाते हुए एक कानून बनाया गया। अदालत ने इस कानून को निरस्त कर दिया। सरकार को विनीत नारायण बनाम भारत सरकार के मामले में विवादास्पद एकल निर्देश के मामले में भी ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ा था। उसके तहत शीर्ष नौकरशाहों के खिलाफ जांच की शुरुआत के लिए सरकार की पूर्व अनुमति की आवश्यकता थी। जब कर्नाटक सरकार ने कावेरी जल विवाद मामले में पंचाट के फैसले का असर खत्म करने की कोशिश की तो सर्वोच्च न्यायालय ने कानून को निरस्त करते हुए कहा, 'अधिनियम का लक्ष्य अदालती फैसले को शक्तिहीन करना है। ऐसे कानून के जरिये राज्य न्यायिक अधिकार आजमाने और अपीलीय अदालत या पंचाट की तरह व्यवहार करते हैं।' पी सांबमूर्ति बनाम आंध्र प्रदेश के मामले में अदालत ने कहा था कि अगर न्यायिक समीक्षा के अधिकार के समक्ष राज्य सरकार नए कानून लाकर उनका असर खत्म करेगी तो यह विधि के शासन के लिए मौत की घंटी के समान होगा।

बैलों की लड़ाई का मामला पशु प्रेमियों के लिए भी कुछ सबक समेटे है। उनको न्यायपालिका को इस हद तक नहीं खींचना चाहिए जहां वह अभी है। किसी को भी आश्चर्य हो सकता है कि आखिर वे बैलों या कुत्तों जैसे जानवरों के प्रति इतने आसक्त क्यों हैं जबकि वे मुर्गीपालने वालों या रेशमी कीड़ों के बारे में कुछ नहीं कहते। बहरहाल न्यायपालिका को भी सामाजिक-धार्मिक सुधार के लिए तब प्रयास नहीं करना चाहिए जबकि समाज उसके लिए तैयार नहीं हो। उसके पास आदेशों का पालन कराने के लिए कोई मशीनरी नहीं है। वहीं एक खतरा यह भी रहता है कि असहज करने वाले आदेशों से चिढ़े हुए राजनेता भीड़ का सहारा लें।

एम जे एंटनी

Date: 07-02-17

कर प्रशासन की जवाबदेही

वर्ष 2017-18 के आम बजट समेत हाल के दिनों में सरकार की नीतियों में कर दायरा बढ़ाने का लक्ष्य साफ नजर आता है, जो स्वागतयोग्य है। अपेक्षाकृत कम करयोग्य आय वाले लोगों के लिए कर दर कम करने के प्रयास को इसी दृष्टिi से देखा जाना चाहिए। बहरहाल, अन्य चिंताओं की बात करें तो कराधान को लेकर चिंताएं कम नहीं हुई हैं। खासतौर पर सरकार को यह समझना होगा कि कर प्रशासन की निष्ठुरता और उसकी कमतर जवाबदेही के साथ कर दायरे में विस्तार नहीं लाया जा सकता है। बल्कि हकीकत में इसका उलटा ही होता है। वित्त विधेयक के कुछ प्रावधानों ने असंतोष को जन्म दिया है। विधेयक में कहा गया है कि पिछली तिथि से कर लगाने के मामले में कर अधिकारियों को पंचाट या अन्य प्राधिकार के समक्ष भी यह बताना आवश्यक नहीं होगा कि आखिर क्यों उनको ऐसा लगा कि कर देने वाला व्यक्ति अपनी परिसंपत्तियां छिपा रहा है।यह प्रावधान परेशान करने वाला है क्योंकि यह जवाबदेही की शर्त का उल्लंघन करता है। अगर आकलन करने वाले अधिकारी ने यह घोषित किया है कि उसके पास यह मानने की पर्याप्त वजह है या उसे यह अंदेशा है कि संबंधित व्यक्ति परिसंपत्तियां छिपा रहा है तो वह इसकी खोजबीन का आदेश जारी कर सकता है। अगर यह विधेयक कानून बन गया तो इस निर्णय की समीक्षा भी नहीं की जा सकेगी। इसका देश में कर प्रशासन की प्रकृति पर अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण प्रभाव होगा। इतना ही नहीं यह बात सरकार की इस बात के एकदम उलट है कि वह इस क्षेत्र में अधिकाधिक सक्रियता से कर प्रशासन को करदाताओं के अनुकूल बनाना चाहती है। आयकर रिटर्न और बैंक खातों का विश्लेषण यह बताता है कि ऐसा करने के लिए मानव हस्तक्षेप को कम से कमतर करना होगा। किसी न किसी बिंदु पर अधिकारी को निर्णय लेना होगा और सरकार को उस अधिकारी को जवाबदेह बनाना चाहिए। जाहिर सी बात है वित्त विधेयक के ये प्रावधान सरकार के इस दावे को ही खारिज करते हैं कि वह मनमानेपन को कम करने की प्रक्रिया में है। अगर विवेक आधारित निर्णय कम किए जा रहे हैं तो आखिर क्यों कर अधिकारियों को जांच से बचाया जा रहा है। निश्चित रूप से जांच की कोई भी प्रक्रिया पारदर्शी मानकों पर आधारित होनी चाहिए? ऐसे सुधारों से कर व्यवस्था में लोगों का विश्वास बहाल होगा।

सामान्य तौर पर देखा जाए तो सरकार का लक्ष्य यह होना चाहिए कि अधिक से अधिक लोग कर व्यवस्था में शामिल हों और इस प्रकार वे औपचारिक अर्थव्यवस्था का हिस्सा बनें। नवंबर में हुई उच्च मूल्य वर्ग की नोटबंदी के बाद बड़े पैमाने पर खातों में जमा हुई धनराशि और इस संबंध में आए ढेर सारे आंकड़ों के बाद जांच की प्रक्रिया शुरू करने के लोभ से बच पाना आसान नहीं है। परंतु ऐसे उपायों का इस्तेमाल सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए। इन्हें पारदर्शी और जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। अगर कर आधार का विस्तार करना है तो कर प्रशासन के वास्तविक संस्थागत सुधारों को प्राथमिकता पर अंजाम देना होगा। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बजट में इस दिशा में बहुत अधिक कदम देखने को नहीं मिले। यह बात ध्यान देने लायक है कि फिलहाल विभिन्न प्राधिकारों के पास प्रत्यक्ष कर के करीब 390,000 मामले लंबित हैं। अगर इन मामलों को पारदर्शी ढंग से और जल्दी हल किया जाता है तो नए मामलों में मनमाना व्यवहार देखने को नहीं मिलेगा। इस बात को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। कर वंचना एक गंभीर समस्या है। सरकार का इस पर प्रहार सही है। परंतु जब तक कर वंचना कम करने के लिए सही नीति नहीं अपनाई जाएगी और इस क्रम में कर प्रशासन पर जनता का भरोसा नहीं बढ़ाया जाएगा। तब तक इसका विफल होना निश्चित है।

दैनिक भास्कर

Date: 07-02-17

चीन का मिसाइल प्रदर्शन क्षेत्र में बढ़ते तनाव का संकेत

आमतौर पर अपने हथियार गोपनीय रखने वाली चीन की पीपुल्स लिबरेशन आर्मी ने मध्यम दूरी की मिसाइल डीएफ-16 का प्रदर्शन करके जता दिया है कि वह अमेरिका के साथ एक प्रकार के शीतयुद्ध में उलझने को तैयार है। चीन ने कहा भी है कि 20 जनवरी को डोनाल्ड ट्रम्प के राष्ट्रपति बनने के बाद युद्ध का खतरा ज्यादा वास्तविक हो गया है और एशिया व प्रशांत की सुरक्षा की स्थिति और जटिल हो गई है।

दरअसल, ट्रम्प ने पद की शपथ लेने के बाद ताइवान के राष्ट्रपति से बात की। इससे चीन ज्यादा सतर्क हो गया और उसने ताइवान के साथ ही दक्षिण चीन सागर में अपनी दखलंदाजी बढ़ाई है जबकि अमेरिका इसे पसंद नहीं करता। चीनी दखलंदाजी पर भारत ने भी आपत्ति जताई थी। जाहिर है प्रतिद्वंद्वी होने और अमेरिका का रणनीतिक भागीदार होने के नाते भारत भी चीन के निशाने पर है। विशेषकर पिछले साल अगस्त में हुए लेमोआ(लॉजिस्टिक्स एक्सचेंज मैमोरेंडम ऑफ एग्रीमेंट) समझौते के बाद अब भारत अमेरिका के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने को तैयार है।इसके तहत न सिर्फ शस्त्र निर्माण प्रौद्योगिकी का आदान-प्रदान होगा बल्कि अमेरिकी फौजें और मिसाइलें भी भारत भूमि पर तैनात हो सकेंगी। इसलिए अगर चीन अमेरिका के विरुद्ध किसी प्रकार की सैन्य तैयारी कर रहा है या अमेरिका चीन के विरुद्ध कुछ ऐसा कर रहा है तो भारत उसके अच्छे-बुरे प्रभावों से बच नहीं सकता। सवाल यह है कि आमतौर पर अपने कारगर हथियारों का प्रदर्शन करने से झिझकने वाली चीनी सेना अब प्रदर्शनकारी क्यों हो गई है? इसके दो अर्थ हो सकते हैं।

एक तो यह कि चीन अमेरिका से उत्पन्न होने वाले हर खतरे से निपटने और उसे मुंहतोड़ जवाब देने को तैयार है। क्योंकि चीन के सैन्य अधिकारियों ने डी-16 मिसाइल और उसके साथ चाइना रॉकेट फोर्स के विविध हथियारों का प्रदर्शन करते हुए यह कहा है कि उसकी यह मिसाइल क्रूज मिसाइल से ज्यादा अचूक निशाना साधती है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि ट्रम्प को यह एक प्रकार की चेतावनी है कि वे चीन के आसपास कोई दखलंदाजी न करें। यह भी हो सकता है कि व्यापार के क्षेत्र में आगे बढ़ा हुआ चीन युद्ध की बजाय शांति के आक्रामक रुख से काम चलाना चाहता है। दोनों स्थितियों में भारत को हर कदम संभलकर और सधे हुए तरीके से ही रखना होगा, क्योंकि अमेरिकी निकटता के लाभ चीन से दूरी के कारण खो भी सकते हैं।

Date: 07-02-17

बदलाव की योजनाओं से ऐसे बदल रहा है देश

परिवर्तन ही प्रगति और किसी समाज या राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि की कुंजी है। सुधार के कदमों की शृंखला से देश को तरक्की की राह पर तेजी से बढ़ाने के अथक प्रयास ही प्रधानमंत्री मोदी की एनडीए सरकार का 2014 में सत्ता में आने के बाद से मूलमंत्र रहा है। बायोमेट्रिक हाजिरी

प्रणाली से लेकर पहली बार अज्ञात रहकर काम करने वालों का पद्म पुरस्कारों के लिए चयन या राजनीतिक चंदे में पारदर्शिता लाने तक प्रधानमंत्री लोगों की मानसिकता और संस्थाओं की कार्यप्रणाली में रूपांतरण लाने की कोशिश कर रहे हैं। यह कोशिश दशकों पुरानी पृथक रेलवे बजट पेश करने की परम्परा की बजाय एक ही व्यापक बजट पेश करने में भी झलकी है। यथास्थितिवादी परिवर्तन से घबराते हैं, किंतु दूरदर्शी साहस व संकल्प के साथ राष्ट्र के व्यापक हित में परिवर्तन लाने वाले फैसले लेने में सक्षम होते हैं, क्योंकि उनके कोई स्वार्थ प्रेरित इरादे नहीं होते हैं।

पुराने बड़े नोटों को बंद करने और देश की सफाई कर रहे अन्य बदलाव प्रधानमंत्री के ध्येय वाक्य, 'रिफॉर्म (सुधार), परफॉर्म (अमल) एंड ट्रान्सफॉर्म (रूपांतरण)' के अनुरूप ही हैं। बेहतर भविष्य के लिए भारत के रूपांतरण का इरादा शुरुआत के फैसले में ही दिखाई दिया था, जिसके तहत योजना आयोग को खत्म करके नीति आयोग गठित किया गया था, जो नेशनल इंस्टीट्यूशन ऑफ ट्रांसफॉर्मिंग इंडिया का ही संक्षिप्त रूप है। संचार स्पेक्ट्रम और कोयला खनन के अधिकारों की पारदर्शी नीलामी भी ऐसी ही पहल थी, जिससे सरकार के खजाने में लाखों करोड़ रुपए आए। यह यूपीए सरकार के दौरान घोटाले से दागदार नीलामी प्रक्रिया के एकदम उलट था। राज्यों को 42 फीसदी व स्थानीय स्वशासन संस्थाओं को 5 फीसदी फंड्स देने की 14वें वित्त आयोग की सिफारिशों को यथावत स्वीकार करना सहयोगात्मक संघवाद और टीम इंडिया की भावना में मोदीजी के दृढ़-विश्वास का उदाहरण है।

राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने संसद में दिए अभिभाषण में कहा था कि गुरु गोबिंद सिंह और संत-दार्शनिक रामानुजाचार्य ने सामाजिक रूपांतरण अौर सुधार का जो मार्ग दिखाया है, वह सबके लिए दीपस्तंभ की तरह है और मेरी सरकार के लिए प्रेरणा। सरकार ने पहले दिन से ही 'गांव, गरीब, किसान, युवा, महिला और मजदूरों' के कल्याण को प्राथमिकता दी है। वित्तीय समावेश के लिए जन-धन और प्रधानमंत्री मुद्रा योजना ने जमीनी स्तर पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला है। जन-धन के तहत 26 करोड़ की असाधारण संख्या में लोगों के बैंक खाते खोले गए हैं और मुद्रा योजना के तहत छोटे उद्यमियों को 2 लाख करोड़ रुपए मुहैया कराए हैं, जिसमें से 70 फीसदी महिला उद्यमियों को मिला है। बहुत बार सुना हुआ जुमला है, स्वच्छता ईश्वर के नजदीक का होने का अहसास है। दुर्भाग्य से जब तक सरकार ने सोच बदलने वाला 'स्वच्छ भारत मिशन' शुरू नहीं किया तब तक किसी सरकार ने स्वच्छता के महत्वपूर्ण पहलू पर ध्यान नहीं दिया। यह अब एक तरह से जन-आंदोलन हो चुका है। नतीजा यह है कि 450 से ज्यादा शहरों, 1.40 लाख गांवों, 77 जिलों और तीन राज्यों ने खुद को 'खुले में टॉयलेट जाने' के अभिशाप से मुक्त घोषित कर दिया है। लोगों के रवैये में उल्लेखनीय बदलाव से यह संभव हुआ है। मिशन के तहत 3 करोड़ से ज्यादा टॉयलेट निर्मित हुए हैं।

'गिव इट अप' अभियान भी लोगों का रवैया बदलने पर केंद्रित पहल है। संपन्न परिवारों से की गई प्रधानमंत्री की अपील के बाद 1.20 करोड़ उपभोक्ताओं ने रसोई गैस की सब्सिडी त्याग दी है। जन धन, आधार-मोबाइल के जरिये सीधे खातों में सब्सिडी राशि पहुंचाने की योजना ने 36,000 करोड़ रुपए का रिसाव रोका गया है। इसी तरह रसोई गैस सब्सिडी पहुंचाने की दुनिया की सबसे बड़ी नकद हस्तांतरण की 'पहल' योजना से पिछले दो वर्षों में 21,000 करोड़ रुपए की बचत हुई है। खुशी की बात है कि चंडीगढ़ और अन्य आठ जिले केरोसिन मुक्त घोषित हुए हैं। 2022 तक किसानों की अामदनी दोगुनी करने व किसानों की आत्महत्याएं रोकने के सरकार के विज़न के हिस्से के रूप में किसानों पर केंद्रित योजनाएं जैसे प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना और प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजनाएं बहुत अच्छे नतीजे दे रही हैं। किसानों को आसान ऋण उपलब्ध कराने के लिए नाबार्ड का फंड दोगुना कर 41,000 करोड़ रुपए कर दिया गया है। दलहन पर न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाकर और 8 लाख टन दलहन खरीदकर उनकी कीमतें काबू में लाई गई हैं।

'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' बिगड़ते लैंगिक अनुपात की समस्या पर केंद्रित रूपांतरकारी पहल है। प्रधानमंत्री सुकन्या समृद्धि योजना के तहत 11,000 करोड़ रुपए से ज्यादा की राशि एक करोड़ से ज्यादा खातों में जमा की गई है। यह योजना बालिकाओं का सुरक्षित भविष्य सुनिश्चित करती है। गर्भवती महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश 12 हफ्ते से बढ़ाकर 26 हफ्ते किया गया है। भ्रष्टाचार रोकने और काले धन को बाहर

लाने के लिए नोटबंदी का बदलाव लाने वाला कदम उठाया गया। इससे सारा पैसा बैंकों में आ गया है और बैंकोंे में नकदी की इस उपलब्धता के कारण ब्याज दरें कम होकर अधिक लोगों को ऋण उपलब्ध हो रहा है। रूपांतरण की इस कथा में 'भीम' (भारत इंटरफेस फॉर मनी) की जबर्दस्त लोकप्रियता सफलता की कई कहानियों मे से एक है।रूपांतरण लाने वाली योजनाओं में एक राष्ट्र, एक बाजार के लिए जीएसटी, दीनदयाल ग्राम ज्योति योजना (18 हजार विद्युतहीन गांवों में से 11 हजार का विद्युतीकरण), किफायती मूल्य पर 20 करोड़ एलईडी बल्ब की सप्लाई (इससे उपभोक्ता के 10,000 करोड़ रुपए बचे), बच्चों के टीकाकरण की इंद्रधनुष योजना, अजा, जजा और महिला उद्यमियों के लिए स्टैंड अप इंडिया योजना, 1100 पुराने कानूनों का खात्मा व 400 और निकट भविष्य में खत्म किए जाएंगे, न्यूनतम 1000 रुपए की मासिक पेंशन।जहां ऐसे प्रगतिशील और क्रांतिकारी कदमों की सूची व्यापक है, वहीं यह कहना पर्याप्त होगा कि एनडीए सरकार 'पुनरुत्थान और स्वच्छ भारत' के रूपांतरकारी मार्ग से विचलित नहीं होगी। इसके लिए वह हर क्षेत्र में रूपांतरकारी कदम उठाएगी। फिर नकारात्मक सोच वाले और यथास्थितिवादी लोग कितनी ही बाधाएं क्यों न डालें।

वेंकैया नायडू, केंद्रीय सूचना प्रसारण और शहरी आवास मंत्री (ये लेखक के अपने विचार हैं।)

दैनिक जागरण

Date: 07-02-17

पूर्वोत्तर के चिंतित करते हालात

राजनीतिक संकीर्णता के कारण मणिपुर की महान हिंदू विरासत के प्रति कम ही ध्यान गया है। यदि प्रधानमंत्री इस बार होली मणिपुर में मनाएं तो इसका देश-विदेश में बेहद सकारात्मक संदेश जाएगा।गत एक फरवरी से नगालैंड के दो सबसे बड़े जिले कोहिमा और दीमापुर जल रहे हैं। वहां सेना तैनात करनी पड़ी और मुख्यमंत्री टीआर जेलियांग की सुरक्षा के लिए केंद्र सरकार ने विशेष निर्देश दिए हैं। दीमापुर के अलावा चुमोकेडिमा जिले में भी कफ्यरू लगा हुआ है। स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि स्थानीय निकाय चुनाव भी निरस्त क र दिए गए हैं। राज्य में पिछले 16 वर्षो से स्थानीय निकायों के चुनाव नहीं हुए हैं। नगा मात्र संगठन की याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने 33 प्रतिशत महिला आरक्षण के साथ शीघ्र चुनाव कराने के निर्देश दिए थे। इन चुनावों के विरोध में नगा जनजाति को मिले अधिकारों का हनन है, जो उन्हें संविधान की धारा 371-ए के तहत हासिल हैं। इन संगठनों ने नगालैंड में चुनाव के विरोध में बंद आयोजित किया। विरोध प्रदर्शन अत्यंत उग्र होने पर पुलिस की गोलीबारी में दो नगा युवक मारे गए।

इसके बाद हिंसा भड़क गई। जातीय संगठन यह कहते हुए विरोध पर उतर आए कि महिलाओं के लिए आरक्षण उनके परंपरागत जनजातीय अधिकार से जुड़ा है। 1नगालैंड के साथ मणिपुर भी अराजकता और देश के अन्य भागों से जोड़ने वाले राजमार्गो के बंद होने की विभीषिका से जूझ रहा है। एक नवंबर को स्थानीय यूनाइटेड नगा काउंसिल ने जिस बंद का आह्वान किया था, वह बंद अभी समाप्त नहीं हुआ है। नगा काउंसिल का आरोप है कि मणिपुर की कांग्रेस सरकार ने सात नए जिले बनाते समय उससे सलाह नहीं ली थी और इन जिलों से नगा हितों पर चोट पहुंची। मणिपुर की यह आर्थिक नाकेबंदी प्रदेश की आर्थिक कमर तो तोड़ ही रही है, साथ ही साथ वहां का जनजीवन पूरी तरह अस्त-व्यस्त हो गया है। मणिपुर की राजधानी इंफाल लगभग चारों ओर से पहाड़ियों से घिरा हुआ है। वहां सड़क मार्ग से जाने के लिए केवल दो राजमार्ग हैं-राजमार्ग संख्या 2 और 37। इसके अलावा म्यांमार की सीमा पर स्थित मोरे गांव से 100 किलोमीटर की सड़क लड़खड़ाती हुई

इंफाल पहुंचती है। इन तीनों ही मार्गो के दोनों ओर जनजातियों की घनी बस्तियां हैं। वे जब चाहें इन मार्गो पर अवरोध पैदा कर सकते है। 25 नवंबर को नगा काउंसिल के अध्यक्ष गायदोन कामेई और प्रचार सचिव स्टीफेन लाम्कांग की गिरफ्तारी के बाद म्यांमार को भारत से जोड़ने वाले ट्रांस एशियन अंतरराष्ट्रीय राजमार्ग को बंद कर दिया गया। अब तक लगभग 100 वाहन आग की भेंट चढ़ चुके हैं।

इस आर्थिक नाकेबंदी के कारण मणिपुर में आम जरूरत की सभी वस्तुओं के दाम आसमान छू रहे हैं। पेट्रोल 250 रुपये लीटर से ज्यादा दाम पर बिक रहा है। सब्जी, ईंधन, गैस, आटा, दाल और चावल की तो पूछिए ही मत। स्कूल-कॉलेजों की वैसे ही दुर्दशा है। जिसके वश में होता है वह अपने बच्चों को दिल्ली, कोलकाता और देहरादून जैसे शहरों में पढ़ने भेज देता है, लेकिन बाकी गरीब जनता क्या करे? न मर सकती है और न जी सकती है।1दूसरी ओर पूरा देश और मुख्यधारा का मीडिया चुनाव के शोर में डूबे हैं। किसी को इस बात की फिक्र नहीं कि नगालैंड और मणिपुर के बारे में विशेष जानकारी दी जाए और सभी राजनीतिक दलों को इन भावनाओं से अवगत कराएं। अगर आप पूवरेत्तर के दुख में शामिल नहीं हुए तो यह स्वर्ग तुल्य क्षेत्र आपके लिए सबसे बड़े दुख का कारण बन जाएगा। कश्मीर से ज्यादा आतंकवाद और अलगाववाद आज उस पूवरेत्तर में पनप रहा है, जहां अगर शांति कायम होती तो यह क्षेत्र समूचे पूर्वी एशिया के लिए शिक्षा और पर्यटन का सबसे पसंदीदा भारतीय ठिकाना बन सकता था। अकेले मणिपुर में ही 17 से अधिक अलगाववादी संगठन सक्रिय हैं, जिनमें से प्रमुख संगठन वामपंथी झुकाव वाला है। इसने अपना नाम चीन की सेना के नाम पर पीपुल्स लिबरेशन आर्मी रखा है। वहां पर्वतीय क्षेत्रों की जनसंख्या मुख्यत: ईसाई है।

मगर मैदानी इलाकों में वैष्णव हिंदू धर्म के अद्भुत एवं प्रेरणादायी प्रचलन वाला स्वरूप देखने को मिलता है। वहां गोविंद जी का मंदिर और मणिपुर की पांच दिन तक लगातार चलने वाली होली का कहीं दूसरी जगह उदाहरण नहीं मिल सकता। वहीं उत्तर भारत के लिए वृंदावन की लठमार होली ही मानो होली का संपूर्ण परिचय है। राजनीतिक संकीर्णता के कारण मणिपुर की महान हिंदू विरासत के प्रति कम ही ध्यान गया है। यदि प्रधानमंत्री इस बार होली मणिपुर में मनाएं तो इसका देश-विदेश में बेहद सकारात्मक संदेश जाएगा। नगालैंड में तो भारतीय इतिहास की सबसे अनूठी सर्वदलीय सरकार चल रही है। केवल 19 लाख की जनसंख्या और 80 प्रतिशत साक्षरता वाले इस सुंदर प्रदेश में पिछले साल जेलियान के नेतृत्व में जो सरकार बनी उसमें नगालैंड पीपुल्स फ्रंट की सहभागिता के साथ-साथ कांग्रेस, भाजपा, जदयू और एनसीपी के सदस्य भी शामिल हैं। रोचक तथ्य यह है कि कांग्रेस के 8 विधायक हैं, जिनमें 7 को कैबिनेट पद दिया गया है। यहां 1952 से फिजो के नेतृत्व में देश से अलग होने का विद्रोही आतंकवादी आंदोलन भी चल रहा है। चर्च का यहां हर क्षेत्र में वर्चस्व है और अलगाववादी आंदोलन भी उसके साये में पनपता है। उनकी मांग वृहत्तर नगालिंग बनाने की है, जिसमें मणिपुर, असम और अरुणाचल के भी कुछ हिस्से शामिल करने की मांग हो रही है। गत वर्ष यहां शांति व्यवस्था और सुरक्षा के लिए प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बहुत ऐतिहासिक कदम उठाकर नगा समझौता किया था, जिसके दूरगामी परिणाम होंगे। फिर भी इस क्षेत्र को शेष भारत और राजनीतिक दलों द्वारा नजरअंदाज किया जाना भारतीय एकता एवं सद्भाव के लिए बहुत बड़ा खतरा बन रहा है। चुनाव चाहे उत्तर प्रदेश के हों या गोवा के, मीडिया और आम जनता का पूरा ध्यान उन पर ही टिका है और वे पूवरेत्तर पर अपेक्षित रूप से ध्यान नहीं देते। यदि पूवरेत्तर निरंतर अराजकता और आतंक में जलता रहा तो भारत भी सुखी नहीं रह सकता।1मणिपुर और नगालैंड में जनता की शिकायत होती है कि शेष भारत के लोग उन्हें अपना नहीं मानते और जब वे मुंबई जैसे शहरों में नौकरी या पढ़ाई के लिए जाते हैं तो उनके साथ भेदभाव होता है। छुट्टियां मनाने भी लोग नेपाल या सिंगापुर चले जाएंगे, लेकिन स्विट्जरलैंड से भी सुंदर मणिपुर या अरुणाचल का रुख नहीं करेंगे। यह स्थिति हमारी मानसिकता बदलने से ही सुधर सकती है। कृष्ण और रुक्मिणी की कथाओं से गुंजित पूवरेत्तर देश के शेष भाग से विशेष ध्यान की अपेक्षा कर रहा है।

(लेखक राज्यसभा के सदस्य रह चुके हैं)

Date: 07-02-17

अमेरिकी मूल्यों की हिफाजत

यदि अमेरिकी राष्ट्रपति अपने फैसलों के संदर्भ में इसकी चिंता नहीं करते कि उनका विश्व समुदाय पर क्या असर पड़ेगा तो इससे अमेरिका विश्व को प्रभावित करने की अपनी क्षमता खो सकता है।

आतंकवाद को रोकने के लिए सात देशों के नागरिकों के अमेरिका आगमन पर पूरी तरह रोक लगाने के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के फैसले को संघीय अदालत ने अनुचित ठहराकर कुल मिलाकर अमेरिकी हितों और मूल्यों की रक्षा ही की है। आज की दुनिया में इस तरह के प्रतिबंधों के लिए कहीं कोई स्थान नहीं हो सकता। इसलिए और भी नहीं, क्योंकि ऐसे उपायों से आतंकवाद पर लगाम लगाना संभव नहीं। डोनाल्ड ट्रंप ने सात मुस्लिम बहुल देशों के लोगों को अमेरिका आने से रोकने का फैसला करके एक तरह से यह संकेत दिया कि इन देशों का हर वह नागरिक संदिग्ध है जो अमेरिका आना चाहता है। कुल मिलाकर यह एक बुरा विचार है कि किसी देश के सभी नागरिकों को एक ही नजर से देखा जाए। दुर्भाग्य से डोनाल्ड ट्रंप ने यही किया। इस पर आश्चर्य नहीं कि उनके इस फैसले का विरोध इन देशों के साथ-साथ दुनिया के अन्य देशों के लोगों ने भी किया और खुद अमेरिकी जनता के एक बड़े वर्ग ने भी।

डोनाल्ड ट्रंप का आदेश उन अमेरिकी मूल्यों और मर्यादाओं का निरादर करने वाला था जिनके लिए वह दुनिया में अपनी पहचान और प्रतिष्ठा रखता है। डोनाल्ड ट्रंप की रीति-नीति केवल अमेरिका के बुनियादी मूल्यों की अनदेखी करने वाली ही नहीं, बल्कि उनके देश को सदियों पीछे ले जाने वाली भी है। इससे बड़ी विडंबना कोई और नहीं हो सकती कि जो अमेरिका कुछ वर्षो पहले दुनिया में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार के लिए सक्रिय था उसके ही राष्ट्रपति ने एक ऐसा कदम उठाया जो किसी भी दृष्टि से लोकतंत्र के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। 1इस पर आश्चर्य नहीं कि संघीय अदालत के फैसले से डोनाल्ड ट्रंप और उनके सहयोगी कुपित हुए और फैसले के खिलाफ न्याय मंत्रलय ने याचिका दाखिल की। नि:संदेह यह अमेरिका में ही संभव है कि कोई राष्ट्रपति संघीय अदालत के फैसले की खुली आलोचना कर सके, लेकिन अब जब कानून मंत्रलय की अपील भी खारिज हो गई है तब उचित यही होगा कि ट्रंप प्रशासन अपने रुख-रवैये पर नए सिरे से विचार करे।

इस मसले पर गंभीरता से विचार-विमर्श हो, यह रिपब्लिकन पार्टी के अन्य नेताओं को भी सुनिश्चित करना चाहिए। पता नहीं ऐसा होगा या नहीं, लेकिन यह एक तथ्य है कि अमेरिका अभी भी इस स्थिति में है कि उसके फैसले पूरी दुनिया को प्रभावित करते हैं। यदि अमेरिकी राष्ट्रपति अपने फैसलों के संदर्भ में इसकी चिंता नहीं करते कि उनका विश्व समुदाय पर क्या असर पड़ेगा तो इससे अमेरिका विश्व को प्रभावित करने की अपनी क्षमता खो सकता है। यह सही है कि हर देश को यह अधिकार है कि वह अपने हितों की रक्षा किस तरह करे, लेकिन हितों की रक्षा के नाम पर ऐसे फैसलों का कोई औचित्य नहीं जो सामान्य मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करते हों। यह अच्छी बात है कि डोनाल्ड ट्रंप पूरी दुनिया के लिए चिंता का विषय बने आतंकवाद पर चोट करना चाहते हैं, लेकिन उन्हें इसका भान होना चाहिए कि पिछले कुछ वर्षो में किस तरह आतंक विरोधी नीतियों ने नए आतंकी पैदा करने का काम किया है।

अच्छा यह होगा कि ट्रंप शासन मुस्लिम देशों के आम नागरिकों को निशाने पर लेने के बजाय इन देशों के उन नेताओं और संस्थाओं के खिलाफ कड़ाई बरते जो आतंकवाद को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हवा देने का काम कर रहे हैं।आतंकवाद को रोकने के लिए सात देशों के नागरिकों के अमेरिका आगमन पर पूरी तरह रोक लगाने के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप के फैसले को संघीय अदालत ने अनुचित ठहराकर कुल मिलाकर अमेरिकी हितों और मूल्यों की रक्षा ही की है। आज की दुनिया में इस तरह के प्रतिबंधों के लिए कहीं कोई स्थान नहीं हो सकता। इसलिए और भी नहीं,

क्योंकि ऐसे उपायों से आतंकवाद पर लगाम लगाना संभव नहीं। डोनाल्ड ट्रंप ने सात मुस्लिम बहुल देशों के लोगों को अमेरिका आने से रोकने का फैसला करके एक तरह से यह संकेत दिया कि इन देशों का हर वह नागरिक संदिग्ध है जो अमेरिका आना चाहता है। कुल मिलाकर यह एक बुरा विचार है कि किसी देश के सभी नागरिकों को एक ही नजर से देखा जाए। दुर्भाग्य से डोनाल्ड ट्रंप ने यही किया। इस पर आश्चर्य नहीं कि उनके इस फैसले का विरोध इन देशों के साथ-साथ दुनिया के अन्य देशों के लोगों ने भी किया और खुद अमेरिकी जनता के एक बड़े वर्ग ने भी। डोनाल्ड ट्रंप का आदेश उन अमेरिकी मूल्यों और मर्यादाओं का निरादर करने वाला था जिनके लिए वह दुनिया में अपनी पहचान और प्रतिष्ठा रखता है। डोनाल्ड ट्रंप की रीति-नीति केवल अमेरिका के बुनियादी मूल्यों की अनदेखी करने वाली ही नहीं, बल्कि उनके देश को सदियों पीछे ले जाने वाली भी है। इससे बड़ी विडंबना कोई और नहीं हो सकती कि जो अमेरिका कुछ वर्षो पहले दुनिया में लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रसार के लिए सक्रिय था उसके ही राष्ट्रपति ने एक ऐसा कदम उठाया जो किसी भी दृष्टि से लोकतंत्र के अनुरूप नहीं कहा जा सकता। 1इस पर आश्चर्य नहीं कि संघीय अदालत के फैसले से डोनाल्ड ट्रंप और उनके सहयोगी कुपित हुए और फैसले के खिलाफ न्याय मंत्रलय ने याचिका दाखिल की।

नि:संदेह यह अमेरिका में ही संभव है कि कोई राष्ट्रपति संघीय अदालत के फैसले की खुली आलोचना कर सके, लेकिन अब जब कानून मंत्रलय की अपील भी खारिज हो गई है तब उचित यही होगा कि ट्रंप प्रशासन अपने रुख-रवैये पर नए सिरे से विचार करे। इस मसले पर गंभीरता से विचार-विमर्श हो, यह रिपब्लिकन पार्टी के अन्य नेताओं को भी सुनिश्चित करना चाहिए। पता नहीं ऐसा होगा या नहीं, लेकिन यह एक तथ्य है कि अमेरिका अभी भी इस स्थिति में है कि उसके फैसले पूरी दुनिया को प्रभावित करते हैं। यदि अमेरिकी राष्ट्रपति अपने फैसलों के संदर्भ में इसकी चिंता नहीं करते कि उनका विश्व समुदाय पर क्या असर पड़ेगा तो इससे अमेरिका विश्व को प्रभावित करने की अपनी क्षमता खो सकता है। यह सही है कि हर देश को यह अधिकार है कि वह अपने हितों की रक्षा किस तरह करे, लेकिन हितों की रक्षा के नाम पर ऐसे फैसलों का कोई औचित्य नहीं जो सामान्य मानवीय मूल्यों की उपेक्षा करते हों। यह अच्छी बात है कि डोनाल्ड ट्रंप पूरी दुनिया के लिए चिंता का विषय बने आतंकवाद पर चोट करना चाहते हैं, लेकिन उन्हें इसका भान होना चाहिए कि पिछले कुछ वर्षो में किस तरह आतंक विरोधी नीतियों ने नए आतंकी पैदा करने का काम किया है। अच्छा यह होगा कि ट्रंप शासन मुस्लिम देशों के आम नागरिकों को निशाने पर लेने के बजाय इन देशों के उन नेताओं और संस्थाओं के खिलाफ कड़ाई बरते जो आतंकवाद को परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से हवा देने का काम कर रहे हैं।

जनसत्ता

Date: 06-02-17

लापरवाही का कचरा

चेन्नई के एन्नोर बंदरगाह पर दो जलपोतों के टकराने से भारी मात्रा में फैले तेल की वजह से समुद्री जीवों पर संकट गहरा गया है। पिछले महीने की अट्ठाईस तारीख को दो पोत आपस में टकरा गए। एक जलपोत में पेट्रोलियम तेल भरा था और दूसरा एलपीजी गैस उतार कर वापसी के रास्ते में था। समुद्र में तेल फैलने की वजह से न सिर्फ सैलानियों, बल्कि समुद्री जीवों को मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है। मगर विचित्र है कि केंद्र सरकार ने करीब एक हफ्ते बाद एन्नोर बंदरगाह की सफाई और जलपोतों के आपस में टकराने की जांच का आदेश दिया। अब कहा जा रहा है कि समुद्र में फैले तेल का साठ फीसद से अधिक

हिस्सा साफ कर दिया गया है और जल-जीवों को इससे कोई खतरा नहीं है। मगर वहां तेल सनी गाद निकालने में जिस तरह की मुश्किलें पेश आ रही हैं, उसे देखते हुए कहना मुश्किल है कि जल्दी ही इस समस्या से पार पा लिया जाएगा।

बंदरगाहों पर सामान भरने और उतारने के लिए जलपोतों का आना-जाना लगा रहता है। पर उनका संचालन कंप्यूटरीकृत प्रणाली से होता है, इसलिए यह समझना मुश्किल है कि कहां लापरवाही हुई, जिसके चलते दोनों पोत आपस में इस कदर टकरा गए कि इतनी भारी मात्रा में तेल का रिसाव हो गया। खासकर ज्वलनशील पदार्थ ढोने वाले वाहनों के संचालन में विशेष सावधानी बरती जाती है, मगर इन पोतों के संचालन में यह ध्यान क्यों नहीं रखा गया। गनीमत है कि इस हादसे में कोई हताहत नहीं हुआ और न आग लगने जैसी कोई बड़ी घटना हुई। अब केंद्र और राज्य सरकारें यह भरोसा दिलाने में जुटी हैं कि इस घटना से जल-जीवों को कोई खतरा पैदा नहीं हुआ है। जबकि यह हकीकत किसी से छिपी नहीं है कि जब भी इस तरह की कोई घटना हुई है, भारी मात्रा में मछलियां और कछुए वगैरह मृत पाए गए हैं।

समुद्र में बढ़ते प्रदूषण और जलपोतों का आवागमन तेज होने से समुद्री जीवों के जीवन पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को लेकर अनेक अध्ययन आ चुके हैं। समुद्र तटों पर सैलानियों द्वारा फैलाए गए कचरे और अन्य रासायनिक अपशिष्ट की वजह से अक्सर समुद्री जीवों के मरने की खबरें आती रहती हैं। वैसे ही समुद्री प्रदूषण की वजह से कछुओं और मछलियों आदि की अनेक प्रजातियां विलुप्त होने के कगार पर हैं। उनके संरक्षण के ठोस उपाय किए जाने की मांग उठती रही है। ऐसे में समुद्र में तेल फैलने से प्रदूषण का स्तर क्या हो गया होगा, अंदाजा लगाया जा सकता है। हालांकि बंदरगाह के कर्मचारी समुद्र में फैले तैलीय कचरे को हटाने में जुटे हुए हैं, पर उनके पास न तो उपयुक्त मशीनें हैं और न ऐसी स्थिति से निपटने का कोई पुख्ता प्रशिक्षण। अब भी बहुत सारे मजदूर बाल्टियों से गाद उलीचने में जुटे हुए हैं। जो मशीनें लगाई भी गई हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं। एन्नोर जैसे व्यस्त बंदरगाहों पर, जहां रोज बड़ी संख्या में जलपोतों का आना-जाना लगा रहता है, वहां ऐसी स्थिति से तत्काल निपटने के कारगर इंतजाम क्यों नहीं किए जाते? बंदरगाह उद्योग आज दुनिया के कमाई वाले बड़े कारोबार में शामिल है, पर सुरक्षा इंतजाम के मामले में इस कदर लापरवाही होगी, तो इसका बुरा असर पड़ सकता है। सुरक्षा संबंधी पहलू के साथ-साथ समुद्री जीवन पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव की भी जवाबदेही तय होनी चाहिए।

Date: 06-02-17

नगा द्वंद्व

कुछ दिनों से नगालैंड एक भयावह स्थिति से गुजर रहा है। तलवारें खिंची हैं। एक तरफ जनजातीय संगठन हैं और दूसरी तरफ सरकार। जनजातीय संगठनों के विरोध-प्रदर्शनों, तोड़-फोड़ और आगजनी आदि से निपटने के लिए हुई पुलिस फायरिंग में दो व्यक्तियों की मौत हो चुकी है। अराजकता तथा अफवाहों को फैलने से रोकने के लिए सरकार ने कुछ शहरी इलाकों में कर्फ्यू के अलावा इंटरनेट समेत संचार सेवा को स्थगित रखने का विकल्प भी आजमाया। हालांकि आरक्षण को लेकर जातियों की गोलबंदी, तनाव और टकराव की घटनाएं देश के अनेक हिस्सों में कई बार हो चुकी हैं। पर नगर निकायों में स्त्रियों के तैंतीस फीसद आरक्षण का ऐसा उग्र विरोध शायद ही किसी अन्य राज्य में हुआ हो। नगालैंड के जनजातीय संगठनों का कहना है कि इस तरह का आरक्षण उनकी पारंपरिक संस्कृति और लोकाचार के खिलाफ है। मजे की बात यह

कि अपने तीखे विरोध को जायज ठहराने के लिए वे संविधान के अनुच्छेद 371 (ए) का हवाला भी देते हैं, जिसके तहत उन्हें अपनी परंपरा, संस्कृति तथा सामाजिक प्रथाओं के संरक्षण का अधिकार प्राप्त है, पर जब स्थानीय निकायों में स्त्रियों के तैंतीस फीसद आरक्षण की बात आती है, तो वे संवैधानिक प्रावधान का तर्क किनारे कर देते हैं। उनके इसी रवैये के चलते आज तक स्थानीय निकायों का चुनाव नहीं हो सका है। नगालैंड सरकार का कहना है कि इसके चलते राज्य को केंद्र से मिलने वाले कुछ तरह के आबंटनों से वंचित होना पड़ रहा है। पर यह तर्क भी फिलहालबेअसर साबित हुआ है।

विडंबना यह है कि 2012 में खुद विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित कर तैंतीस फीसद आरक्षण पर विरोध जताया था, जिसे पिछले साल उसने वापस ले लिया। इससे समझा जा सकता है कि राज्य की राजनीति पर जनजातीय संगठनों का कितना दबाव रहा है। जहां सामुदायिक रूप से यह निर्णय होता हो कि किसे वोट देना है वहां यह हैरत की बात नहीं है। हालांकि नगा समाज में परदा प्रथा नहीं रही है, स्त्रियां ग्राम विकास परिषदों में सदस्य भी हैं। पर आज तक कोई भी महिला विधानसभा में नहीं पहुंच सकी। अलबत्ता 1977 के लोकसभा चुनाव में राज्य ने रानो एम शैजा के रूप में एक महिला को सांसद चुना था। पर वह अपवाद होकर रह गया। कइयों का अनुमान है कि ताजा घटनाओं के पीछे कोई सुनियोजित षड्यंत्र हो सकता है। उनकी दलील है कि जब ग्राम विकास बोर्डों में महिलाओं को हासिल पच्चीस आरक्षण पर विवाद नहीं है, तो नगर निकायों में उनके लिए सीटें आरक्षित करने पर इतना बावेला क्यों?बेशक सरकार को इस पहलू से जांच करानी चाहिए। पर नगा समाज का द्वंद्व जाहिर है।

यों तो वहां की जनजातियां अपनी आत्मछवि समतामूलक समाज के रूप में देखती आई हैं, पर वे यह भी मानती हैं कि राजनीति केवल पुरुषों का काम है। यह मानसिकता बहुत-से पारंपरिक समाजों में देखने को मिलेगी, पर स्थानीय निकायों में स्त्रियों के आरक्षण का ऐसा उग्र विरोध शायद अपूर्व है। विचित्र यह कि यह हाल उस राज्य में है जहां शिक्षा का प्रसार और आधुनिकता का प्रवेश हर तरफ दिखाई देता है। पर साफ है कि आधुनिकता सतह पर ही रह गई है, और जहां जोखिम उठाने तथा मानसिकता बदलने के उद्यम की जरूरत है, वहां उसने घुटने टेक दिए हैं। नगालैंड के राजनीतिक नेतृत्व और सिविल सोसायटी को चाहिए कि विरोधियों से संवाद कायम कर, महिलाओं के लिए बाकी सारे देश में लागू संवैधानिक प्रावधान के पक्ष में सर्वसम्मति बनाने की कोशिश करें।

THE HINDU

Date: 06-02-17

A chronicle of reverse metamorphosis

The last column, “Is past the key to future?” (Jan. 30, 2017), was not about the fortunes of the news media industry. It was about the rupture caused by technological disruption in the value system that governs the information ecology. The story I am sharing now is hard to believe and I would have dismissed it as fantasy a year ago. It is about a bunch of teenagers who made money by generating traffic to websites through sensational fake news and, while doing so, played a role in upending an election far away.

In the political imagination of the developing world, undivided Yugoslavia represented the ideas of non-alignment and peaceful coexistence. One of its ancient cities, Vilazora, was renamed Titov Veles at the end of World War II to commemorate Josip Broz Tito. After the disintegration of Yugoslavia, the city became a part of Macedonia and it was renamed Veles in 1996. The lies and slander that have been produced by some of its

youngsters in the recent past were amplified by social media platforms to alter the rules of public discourse. This inconspicuous town became the unlikely epicentre for fake news in the run-up to the U.S. presidential elections.

Craig Silverman and Lawrence Alexander of *BuzzFeed* spotted the role of this small city in the sudden spike in fake news ("How teens in the Balkans are duping Trump supporters with fake news", Nov.4, 2016). They identified more than 100 pro-Donald Trump websites being run from Veles, which has become a sort of cottage industry. The youngsters from Veles had created websites with American-sounding domain names such as WorldPoliticus.com, TrumpVision365.com, USConservativeToday.com, DonaldTrumpNews.co, and USADailyPolitics.com to ensure traffic, and began generating fake news. For instance, a story on WorldPoliticus.com cited unnamed FBI sources and claimed that Hillary Clinton would be indicted in 2017 for crimes related to her email scandal. Trump supporters used social media to generate more than 140,000 shares, reactions, and comments for this baseless story. These numbers, in turn, became a source of revenue for those producing fake news through their Google AdSense account.

Creating fake news

This easy way to earn a substantial amount of money has, of course, a chilling, darker side to it. *The Financial Times* reported that a particularly inflammatory story was put out by one of the Veles websites on December 6, 2016. It claimed that Syrian terrorists had attacked New York, when no such attack took place ("Macedonia's fake news industry sets sights on Europe", Dec.16, 2016). When the *FT* correspondent asked Slavcho Chadiev, the town's mayor, about the websites credited by some with helping to elect Mr. Trump as U.S. President, his opinion was not really different from that of the teenagers who were generating fake news without guilt or responsibility. He said: "No one can be sure, but it's nice to think we could have changed the course of American history... Some think we should now be called 'Trump's Veles.'" The *FT* report documents the total absence of concern for truth. "One of my best stories said Trump had slapped a Muslim guy at a rally," said one 17-year-old website owner to the *FT*. Another website owner said that he had "created more than 10,000 fake Facebook profiles to post links across the social network and used an automated tool to schedule millions of posts." The *FT* report also cites one of the Facebook groups managed by him called "American Politics Today" that has more than 85,000 followers.In its magazine section, the BBC profiled some of the youth from Veles who are actively involved in generating fake news ("The city getting rich from fake news", Dec.5, 2016). One of them told the BBC's Emma Jane Kirby: "The Americans loved our stories and we make money from them. Who cares if they are true or false?" He added: "Teenagers in our city don't care how Americans vote. They are only satisfied that they make money and can buy expensive clothes and drinks!"

Role of technology companies

My concerns are not restricted to the activities of a bunch of teenagers from a distant country exploiting political cleavages to earn some money. They are also about the role of major technology companies, which have become global platforms and the carriers of traffic to news sites. *The Washington Post*'s Caitlin Dewey has meticulously explained how Facebook repeatedly trended fake news ("Facebook has repeatedly trended fake news since firing its human editors", Oct.12, 2016). She reported that Facebook, on August 26, 2016, laid off its editorial team and replaced them with engineers to vet news. Earlier, editors verified trending topics that were thrown up by the algorithm. Now, the engineers were asked to accept every trending topic linked to three or more recent articles irrespective of the source.

The automated streams push advertisements to fake news, which in turn undermines the financial sustainability of credible news organisations. That is just one part of the tragedy. The shifting of the crucial editorial gatekeeping responsibility from humans to algorithms undermines democracy. In an interview to *The Guardian* ("Facebook's failure: did fake news and polarized politics get Trump elected?" Nov.10, 2016), Claire Wardle, research director at the Tow Center for Digital Journalism, said: "Facebook stumbled into the news business without systems, editorial frameworks and editorial guidelines, and now it's trying to course-correct."

But a closer reading of Facebook CEO Mark Zuckerberg's statements reveals that he is still not prepared to concede that his company is not a mere platform but a major news organisation. His company's "engagement" metrics are oblivious to that all-important line that divides news from misinformation. The answer to this disturbing reality may not lie in more technology or mathematics, but probably in a question: how did the social media, which was a hero during the Arab Spring in 2011, reduce itself to a villain now?

readerseditor@thehindu.co.in

राष्ट्रीय सहारा

Date: 06-02-17

नगा परंपरा के सवाल

नगालैंड ने एक अजीब-सी उलझन पेश की है। वहां शहरी निकाय चुनाव में 33 प्रतिशत महिला आरक्षण पर इस कर उबाल उठा कि चुनाव टालना पड़ा और राज्यपाल को राज्य सरकार की **बर्खास्तगी** तक पर विचार करने का आश्वासन लेना पड़ा। पुलिस की फायरिंग में दो युवकों की जान गई। प्रदर्शनकारियों के मुताबिक महिला **आरक्षण** नगालैंड की संस्कृति के खिलाफ है और संविधान के **अनुच्छेद** 371ए में दिए गए नगा अधिकारों का भी उल्लंघन है। हालांकि, **मुख्यमंत्री** की दलील थी कि शहरी निकाय चुनाव में महिला **आरक्षण** पर अमल करना संवैधानिक अनिवार्यता है। दरअसल, नगालैंड की राजधानी कोहिमा को स्मार्ट सिटी का दर्जा दिया गया है। स्मार्ट सिटी योजना की मद में केंद्रीय आवंटनों और कार्यक्रमों को हासिल करने के लिए कुछ बुनियादी शतरे पर अमल करना जरूरी है।

इन्हीं शतरे में एक शहरी निकाय के चुनाव और **उसमें** 33 प्रतिशत महिला आरक्षण भी है। नगा समाज कबीलाई व्यवस्था में यकीन करता है और उनकी अपनी परंपराओं को लागू करने की संविधान इजाजत देता है। लेकिन महिला उत्थान के संवैधानिक दायित्व को भी पूरा करना हर सरकार के लिए जरूरी है। मुख्यमंत्री यही दलील दे रहे हैं। अब सवाल है कि अगर हर समाज अपनी परंपराओं की दुहाई देकर मानवाधिकारों की इजाजत देने वाले कानूनों पर अमल नहीं होने देगा तो बेहतर मंशा से लागू किए जाने वाले केंद्रीय कानूनों का क्या होगा? परंपरा में निहित अन्यायों को समाप्त करने के खातिर वैधानिक **व्यवस्था** कैसे कायम की जा सकेगी? परंपरागत समाजों में यह आम सहमति बननी चाहिए कि किसी समुदाय के प्रति अन्याय बरतने वाले रीति-रिवाजों से छुटकारा पाया जा सके। कानून इसी का एक **रास्ता** है। महिलाओं की निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी तय करने और उन्हें समान अवसर प्रान करने के लिए ही विधायी संस्थाओं में आरक्षण **की** व्यवस्था की गई है। मगर नगा समाज में इतनी भारी नाराजगी की क्या यह सिर्फ यही वजह है। संभव है दूसरी राजनैतिक वजहों से नाराजगी में मौजूदा मामला चिंगारी बन गया हो। मुख्यमंत्री के प्रति लंबे समय से जारी नाराजगी भी इस उबाल को हवा देने की एक वजह बनी हो सकती है। मणिपुर में चुनाव भी एक वजह हो सकते हैं, जहां नगा बहुल क्षेत्रों में चुनाव का विरोध हो रहा है। वजह कुछ भी हो पर सवाल पेचीदा है और इसका हल भी नगा समाज को ही निकालना होगा।

Date: 06-02-17

बदलनी होगी सामाजिक संरचना

महिलाओं को जब नए दायरों में छलांग लगानी हैं, वहां घुसकर पुरु ष वर्चस्व से जुड़े पूर्वाग्रहों-दुराग्रहों को ध्वस्त करना है, तो इसके लिए समाज से कोई खास नरमी की उम्मीद किए बगैर सारा जोर अपनी क्षमताएं विकसित करने पर लगाना होगा। लेकिन मर्दवादी माइंडसेट बदलने के लिए कई प्रयास उन सारे पेशों के शीर्ष पर बैठे लोगों को करने होंगे, जिनकी नजर नये औजारों और नये हथियारों को pआजमाने में तो है, लेकिन नये नजरिये को लेकर अभी भी उन्हें काफी परहेज है। दिमागी स्तर पर की जाने वाली इन तब्दीलियों के बगैर महिलाएं किसी भी उस क्षेत्र में कामयाबी से आगे नहीं बढ़ सकती हैं, जिसे फिलहाल पुरु षों तक सीमित माना जाता है।

ताजा घटना आईटी कंपनी इंफोसिस के पुणो स्थित कार्यालय में कंप्यूटर इंजीनियर 23 साल की राशिला राजू की हत्या है, जिसे कंपनी के ही सिक्योरिटी गार्ड ने इसलिए मार दिया कि वह उसकी घूरने की आदत की कई बार शिकायत कर चुकी थी। कुछ लोग इसे महिलाओं का दुस्साहस कह सकते हैं कि हर मोर्चे पर पुरु षों की हमकदम होने की कोशिश में अब वे ज्यादतियां बर्दाश्त नहीं करती हैं, जिनके बारे में अपेक्षा थी कि ऐसी बातों को वे चुपचाप सह जाएंगी। वैसे तो पिछले कुछ अरसे से अदालतें लगातार विभिन्न पेशों में महिलाओं को आगे लाने संबंधी फैसले देती रही हैं और अब सरकार की भी कोशिश है कि कम-से-कम उन सारे सेक्टरों में महिलाओं की उपस्थिति तो दर्ज हो, जिन्हें हमारे देश में महिलाओं के लिए वर्जित माना जाता रहा है और जिन पर अभी तक सिर्फ मदरे का एकाधिकार या वर्चस्व रहा है। महिलाएं सिर्फ अध्यापिकाएं बनकर न रह जाएं, बल्कि वे आईटी सेक्टर में जाएं, बैंकों में जाएं, इंजीनियर-साइंटिस्ट बनें, स्पेस में जाएं और सबसे कठिन माने जाने वाले पेशे यानी फौज में भी अपनी मौजूदगी दर्ज कराएं। लेकिन महिलाओं की ऐसी भूमिका पर ही नहीं, बल्कि उनकी कुल उपस्थिति को लेकर भी तमाम ऐतराज और आशंकाएं फिलहाल कायम रही हैं पर सबसे ज्यादा मुश्किल उन्हें लेकर पुरु षों के नजरिये की है, जिससे जुड़े हालात न सुधरे, तो शायद महिलाएं पूरे कामकाजी माहौल से ही गायब हो जाएंगी। गांवों-कस्बों से निकलकर छोटे-बड़े शहरों में महिलाओं ने कदम बढ़ाने का साहस इसलिए किया था कि वहां उन्हें हर मामले में आजादी मिलेगी और वे मनचाहा काम करते हुए पूरी तरह सुरक्षित रहेंगी। महिलाएं भी ऐसे बदलावों से तालमेल बिठाने का प्रयास भी करती हैं।

लेकिन इस जीवनशैली को अपनाते हुए महिलाओं को जिस स्तर की सुरक्षा और माहौल देने की जरूरत है- हमारे ज्यादातर शहर उस अनिवार्य आवश्यकता की पूर्ति करने में लगातार नाकाम हो रहे हैं। पुणो में रोशिमा की हत्या और कर्नाटक के बेंगलूर में नये साल के मौके पर कई युवतियों के साथ बदतमीजी के किस्सों से यह साफ जाहिर है कि शहरों की सुरक्षा महिलाओं की बदलती जीवनशैली के कतई अनुरूप नहीं है और उसमें तुरंत बड़े स्तर पर परिवर्तन की जरूरत है। असल में, गांव-कस्बों के मुकाबले शहरी महिलाओं की जिंदगी में कई गुना ज्यादा तब्दीलियां हाल के दशक में ही आई हैं। शहरों में न केवल कामकाजी महिलाओं का प्रतिशत बढ़ा है, बल्कि वहां रह रही घरेलू महिलाओं की सार्वजनिक उपस्थिति में भी कई गुना इजाफा हुआ है। पुणो में जिस युवा आईटी इंजीनियर को अपराधी मानसिकता वाले सिक्योरिटी गार्ड ने निशाना बनाया, वह बेशक कामकाजी थी। लेकिन ऐसे खतरे तो हर शहर में हरेक उस आम महिला को हैं, जो एटीएम से पैसे निकालने, घर का राशन लाने, स्कूल की फीस भरने या स्कूल टीचर से मुलाकात करने से लेकर बीमारी में बच्चों व घर के अन्य सदस्यों को डॉक्टर के पास ले जाने या अस्पताल में भर्ती कराने जैसे कई मुश्किल काम अकेले दम पर करती है। इन बाहरी काम के लिए उन्हें घर से कोई मदद नहीं मिलती है,

क्योंकि एकल परिवार की अवधारणा में ये सारी जिम्मेदारियां महिलाओं पर आ पड़ी है। हमारे शहरों के योजनाकारों को एक बार फिर इस बारे में सोचना होगा कि क्या सिर्फ इन्फ्रास्ट्रक्चर के बल पर और रोजगार के अवसर देकर शहरों को आकर्षण का केंद्र बनाया जा सकता है या फिर उन्हें शहरों की सामाजिक संरचना यानी सोशल इंजीनियरिंग के विषय में भी कुछ काम करने की जरूरत है। साफ है कि महिला उत्थान का काम केवल नारों और प्रतीकों से नहीं होने वाला है। कुछ करना है तो हकीकत को खुली आंखों से देखना होगा।